द्वितीय अध्याय

समकालीन स्त्री विमर्श के विभिन्न पक्ष

द्वितीय अध्याय

१. समकालीन स्त्री-विमर्श के विविध आयाम

२. स्त्री-विमर्श का भारतीय-पक्ष

२.१ विमर्श: कोश गत अर्थ

२.२ विमर्श का पारिभाषिक अर्थ

२.३ स्त्री-विमर्श: अर्थ

२.४ स्त्री-विमर्श का इतिहास

२.५ भारतीय-पक्ष में स्त्री-विमर्श का इतिहास

२.६ प्रागैतिहासिक काल में स्त्री की स्थिति

२.७ वैदिक काल में स्त्री की स्थिति

२.८ उपनिषद काल में स्त्री की स्थिति

२.९ रामायण और महाभारत काल में स्त्री की स्थिति

२.१० मध्ययुग में भारतीय नारी की स्थिति

२.११ आधुनिकयुग में नारी की स्थिति

३. स्त्री-विमर्श का पश्चिम-पक्ष

४. हिंदी साहित्य लेखन में स्त्री-विमर्श की दशा एवं दिशा

१. समकालीन स्त्री-विमर्श के विविध आयाम

दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श तथा स्त्री-विमर्श ने साहित्य को समझने की केवल नई दृष्टि प्रदान नहीं की किन्तु उसमें नए जीवन आदर्श को भी स्थापित करने की प्रेरणा भी दी हैं। नारी विमर्श एक ऐसा विमर्श है, जिसने पूरे विश्व में हड़कंप मचा दिया है। नारी विमर्श नारी की मुक्ति से संबंधित विचारधारा है और नारी समाज की धुरी के रूप में समाज की देखभाल कई सदियों से करती आ रही है। भारत देश में नारी को देवी, श्रद्‌धा, अबला जैसे अनेक शब्दों से संबोधित करने की परंपरा बहुत पुराने समय से चली आ रही है। इस तरह के संबोधन तथा विशेषण जोड़कर हमने उसे एक ओर पूजा की वस्तु बना दिया है तो दूसरी ओर अबला के रूप में उसे भोग की भी वस्तु बना दिया हैं। हम सब यह भूल जाते हैं कि नारी मातृसत्ता का नाम है, जो हम सब को जन्म देती है, पालती-पोषती है तथा योग्य भी बनाती है। यह कार्य नारी का मातृरूप ही करता है। आज जीवन के सभी क्षेत्रों में नारी ने अपना स्थान बना लिया है। शिक्षा के सभी क्षेत्र में, सभी परीक्षाओं में स्त्रियां पुरुषों से अधिक आगे रहती है। आज की स्त्री आईएएस, आईपीएस, आईआईटी, चिकित्सा, राजनीति, प्रबंध सभी क्षेत्रों में नारी पुरुषों से भी आगे है। नारी का नौकरी में होना आज एक सामान्य बात है। 70 वर्ष पहले यह एक बहुत बड़ी बात थी। कई सदियों से पुरुष ही घर के भरण-पोषण का दायित्व संभालता आ रहा है। नारी को केवल यह समझाया गया कि तुम अच्छी मां बनो, अच्छी बहन तथा अच्छी पत्नी बनो। इसी में तुम्हारे जीवन की सार्थकता है। बाहर के जीवन से तुम्हें कुछ भी लेना-देना नहीं है। इसीलिए शिक्षा से भी तुम्हारा कोई लेना-देना नहीं है। यदि समाज को सुव्यवस्थित तथा संगठित बनाना है। तो नारी को सम्मानीय स्थान देना होगा, उसे स्वालंबी बनाने के लिए शिक्षित करना होगा। प्रत्यक कन्या का पुत्र की भांति पालन-पोषण करना ही होगा। इसीलिए हमारे समाज की भी यह जिम्मेदारी बनती है कि हम सब मिलकर लड़कियों को इस तरह शिक्षित करें की वह आत्मनिर्भर बने।

जहां तक नारी के योग्यता का प्रश्न है, नारी ने कर्म के सभी क्षेत्रों में अपना नाम सार्थक किया है। स्त्री को नौकरी में आने से अनेक प्रकार के लाभ हुए हैं। सबसे पहला लाभ नारी का एक तरह से मान-सम्मान बढ़ गया है। उसे एक स्वतंत्र पहचान मिली है। अब परिवार को चलाने में वह बराबर की सहयोगी है। अब उसकी पहचान पत्नी के रूप में नहीं परन्तु मित्र के रूप में विकसित होने लगी है। स्त्री तथा पुरुष दोनों समाज रूपी रथ के दो पहिए हैं। दोनों का ही समान रूप से शिक्षित होना आवश्यक है। स्त्री को अशिक्षित रखकर संसार का कोई भी देश, कोई भी समाज अपने कल्याण की बात नहीं सोच सकता।

आजाद भारत में नारी शिक्षा के व्यापक प्रचार-प्रसार ने नारी चेतना को आंदोलन बनाने में अपनी भूमिका अदा की है। इस बीच साहित्य में नारी लेखकों की अपेक्षित संख्या सामने आई है। उनमें अपनी बातों को साहस पूर्वक खुलकर कहने का भाव भी है तथा वह घरेलू जीवन के साथ-साथ अपने व्यक्तिगत जीवन को ज्यादा खुलकर प्रस्तुत करने लगी है।

आज की स्त्री स्वच्छंद और स्वाभिमानी बन गई है। अब तक बच्चे के पालन-पोषण की जिम्मेदारी केवल स्त्री की ही समझी जाती थी। परन्तु आधूनिक समय में माता-पिता दोनों की नैतिक जिम्मेदारी बन गई है। नारी को नारी बनाने में पुरुषवादी मानसिकता का बड़ा योगदान है। आज अशिक्षित और शिक्षित नारी या फिर दोनों ही घर-बाहर अपने दोहरी भूमिका निभा रही है। अनपढ़ को घर में पीसने का अफसोस भी नहीं क्योंकि यह औरतें घर के चूल्हों को जलाने के लिए घर से निकलती है। लेकिन पढ़ी-लिखी स्त्री आत्मनिर्भरता तथा आत्मसम्मान पाने की इच्छा से ही नौकरी करती है। ऐसे में इन आत्मनिर्भर और कामकाजी औरतों को घर बाहर दोनों जगह अपना योगदान दे रही है।

हिंदी साहित्य की बात करें तो स्त्री-विमर्शकारों में शिवानी, ममता कालिया, सूर्यबाला, नमिता सिंह, सुनीता जैन, मृणाल पांडे, नासिरा शर्मा, मंजुल भगत,

मेहरून्निसा परवेज, जितेन्द्र श्रीवास्तव, अनुराधा सिंह, अनामिका आदि उल्लेखनीय है। मन्नू भंडारी का लघु उपन्यास 'आपका बंटी' पाठक को संवेदना के स्तर पर विक्षुब्ध करता है। समाज के मध्यवर्गीय अहमग्रस्त समाज की दुखती रग पर उंगली रख देता है। पढ़े-लिखे समाज में पति-पत्नी के अपने-अपने अहम की टकराहट स्वाभाविक बात है। इस आपसी टकराहट का फल है- शकुन और अजय का तलाक। इन दोनों के बीच उनका बेटा बंटी बुरी तरह से मानसिक रूप से पिस्ता है। पिसते-पिसते वह पहचान से भी परे हो जाता है। यह उपन्यास तनाव से भरा हुआ है। यह तनाव अजय में कम है और शकुन में ज्यादा। पश्चिमी देश में मां का ममत्व चाहे मर गया हो। परन्तु भारतीय नारी का ममत्व अभी जीवित है। जिसे पश्चिमी आधुनिकता धीरे-धीरे खत्म रही है। वास्तव में यह उपन्यास परिवार और स्त्री जीवन की जटिल समस्या का उपन्यास है। जो समाधान नहीं। प्रश्न उठाता है। वह नारीपन से मुक्ति होने का नारा लगाती है। कई स्त्री लेखिका लिखती है कि स्त्री पैदा नहीं होती, बनाई दी जाती है अर्थात स्त्री को अपने बचपन से ही मानसिकरूप से नारी होने की भावना के लिए तैयार किया जाता है। औरत जन्म से ही औरत नहीं होती, परंतु गढ़कर औरत बनती है, कोई भी जैविक, मनोवैज्ञानिक या आर्थिक नियति स्त्री के भाग्य की अकेली नियन्ता नहीं होती। पूरी सभ्यता ही इस अजीबो-गरीब जीवन का निर्माण करती है। स्त्री विमर्श के अंतर्गत कुछ कथाकारों ने ऐसी स्त्रियों का चित्रण किया है, जो आर्थिकरूप से स्वतंत्र और स्वावलंबी होकर विवाह संस्थान का निषेध करती है और पुरुष के साथ मित्र बनकर रहना चाहती है, पत्नी बन कर नहीं। स्त्री को कई सदियों से चार दीवारों, चूल्हा-चौका, परिवार और बच्चों को संभालने तक सीमित कर दिया हैं। जब-जब उसने घर की चौखट लांघने की कोशिश की या फिर पुरुष के अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाई। तब-उसे प्रेम से या फिर क्रोध से पूर्ण घर में धकेल दिया गया। कभी उसे देवी बनाकर उसके पैरों को जकड़ा गया। तो कभी उसके शरीर को आघात पहुंचा कर अनंत काल तक सहन करने के लिए छोड़ दिया गया

आज की आधुनिक नारी स्वच्छंद, स्वतंत्र और आत्मस्वाभिमानी बन गई है। आज आधुनिक स्त्रियां पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर हरे क्षेत्र में सहायता कर रही है। जिनमें उनके प्रवेश की कल्पना पुरुषों ने कभी नहीं की थी। इस बात की अभिव्यक्ति महादेवी वर्मा ने 'श्रृंखला की कड़ियां' में शिक्षा के प्रसार तथा आर्थिक आत्मनिर्भरता के कारण स्त्रियों में आयी नई जागृति की बात की है।

आज महिलाओं को आरक्षण तो प्राप्त हो गया है। वह गांव सरपंच और ग्राम अध्यक्ष भी बन गई है। परंतु वास्तव में उसके हाथ में सत्ता के अधिकार आए हैं क्या? पुरुष के वर्चस्व और उसकी शरीर की ताकत से क्या वह मुकाबला कर पा रही हैं? आधुनिक शिक्षित युवक-युवतियां शिक्षा समाप्त होने के बाद नौकरी करना चाहते हैं। उनका उद्देश्य स्वयं को जीवन में स्थापित करना होता है। अपने दम पर आत्मनिर्भर होने की प्रबल चेष्टा लिए हुए इस पीढ़ी की स्त्री हर हाल में संघर्ष के हर पहलू से लड़ लेती है और बड़ी समझदारी के साथ अपने हिस्से मिले हुए दुख-दर्द को अपने अनुसार सुलझाना भी जानती है। इसके साथ ही साथ, उनको ऐसा जीवन साथी चाहिए। जो उनकी भावनाओं को समझें और उनके व्यक्तित्व का सम्मान भी करें। मित्र बनकर रहे।

समाज के उज्जवल भविष्य की कामना के लिए हमें स्त्री के प्रति अपना नजरिया एवं विचार बदलने होगे। उसे भी मान-सम्मान, स्नेह, शिक्षा, अपनेपन की आवश्यकता है, वह समाज का अभिन्न हिस्सा है। उसमें भी अपार सामर्थ्य और संभावनाएं हैं। जिससे समाज का विकास ही होगा। हमें सकारात्मक सोच को अपनाते हुए उसके अस्तित्व को स्वीकार करना होगा। आज का युग नारी स्वतंत्रता का युग है। रूढ़ियों और कुप्रथाओं के बावजूद वह सभी चुनौतियों का सामना करते हुए विभिन्न क्षेत्रों में अपनी श्रेष्ठता स्थापित कर रही है। आज स्त्रियां सभी क्षेत्रों में नए-नए उपलब्धियां अर्जित कर रही है। भारत में पहली महिला राष्ट्रपति प्रतिभा देवी पाटिल, पहली महिला प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी, लोकसभा की पहली महिला स्पीकर मीरा कुमार, अंतरिक्ष तक पहुंचने वाली पहली भारतीय महिला

कल्पना चावला अनेक उदाहरण यह दर्शाते हैं कि स्त्रियों को न केवल अपनी ताकत का एहसास हो गया है। परन्तु समाज के अन्य वर्ग भी इनकी ताकत का लोहा मानने लगे हैं। आज शिक्षा के कारण नारी में जागरूकता आई है और अन्य क्षेत्र में उसका सम्मान बढा है। आज भारत में नारी शिक्षा की स्थिति संतोषजनक नहीं है। किंतु आशा जनक अवश्य है। सरकार और समाज के प्रयत्नों से नारी शिक्षा का विकास करके उसकी क्षमताओं को विकसित किया जाए तो निश्चित तोर पर हमारे देश का भविष्य उज्जवलीत होगा।

२. स्त्री-विमर्श का भारतीय-पक्ष

स्त्री विमर्श की अवधारणा यह है कि सृष्टि के आरंभ से पितृसत्तात्मक पुरुष वर्चस्व के अधीन परतंत्रता का दंश झेलती अधिकार वंचित महिलाओं को उसके मानवीय अधिकार प्रदान कर। जीवन के हर एक स्तर पर समाज में एक अधिकार संपन्न मनुष्य के रूप में स्थापित करने से संबंधित है। वर्तमान में सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषय के रूप में प्रचलित स्त्री-विमर्श एक आंदोलन के रूप में स्थान बीते हुए तीन-चार दर्शकों से प्राप्त कर रहा है किन्तु इसकी जड़े प्रागैतिहासिक काल से जुड़ी होने के कारण बहुत गहरी है। आज स्त्री विमर्श न केवल स्त्रीगत समस्याओं से ही संबंधित होकर सीमित है। परंतु आज इसकी परिधि व्यक्ति, परिवार, संस्था, समाज, राज्य, राजनीति आदि तक प्रसारित है।

विमर्श का अर्थ है- विचारों का विनिमय करना। पौराणिक समय का 'शास्त्रार्थ' शब्द विमर्श के रूप में आज जाना जाता है। इसके लिए अन्य शब्द 'बातचीत', 'संवाद' भी प्रचलित है। इसी से संबंधित आजकल 'चर्चा' शब्द भी जोरों पर है। इसी तरह परीक्षा पर चर्चा, चाय पर चर्चा आदि। 'विमर्श' शब्द के विचार विनिमय अर्थ के सापेक्ष स्त्री विमर्श का अभिप्राय है- स्त्री संबंधित विचार, विनिमय, स्त्री को केंद्र में रखकर उसे समझने के लिए संवाद या फिर बहस। मानव जीवन से संबंधित सभी तत्वों का स्त्री जीवन पर पड़ने वाले सकारात्मक एवं नकारात्मक

प्रभाव का मूल्यांकन करना और मनुष्य के रूप में उन्नत जीवन स्तर सुनिश्चित करना ही स्त्री विमर्श का ध्येय है।

शारीरिकरूप से भिन्नता होते हुए भी स्त्री एवं पुरुष की स्थिति एक सिक्के के दो पहलू की तरह है। दोनों एक दूसरे के बिना अस्तित्व विहीन। इनकी शारीरिक संरचनात्मक भिन्नता एक दूसरे को पूर्णता प्रदान करती है। भेदभाव, आधिपत्य और शोषण नहीं। मानव जीवन के उत्थान काल में इनमें से कोई भिन्नता नहीं थी। आधिपत्य भाव, स्वामीतत्व भाव तथा शोषण भी नहीं था। प्रकृति के बीच स्वच्छंदरूप से विचरण करता मनुष्य अंग ढकने की सोच भी विकसित नहीं हुई थी। तब तक दोनों समान ही थे। साथ में शिकार करना, भोजन करना, गुफाओं में रहना ही जीवन था। समय के अंतराल में मनुष्य सामाजिक प्राणी बना। सामाजिक जीवन के उन शुरुआती दिनों में तो स्त्रियां सत्ता के केंद्र में थी। पशु चारण के लिए पुरुष समूह में यत्र-तत्र विचरण करता और स्त्रियां पूरे घर की देखभाल करती थी। जैसे-जैसे मनुष्य 'विकास' नामक शब्द से परिचित होता गया वह नैतिक दृष्टि से पतन की ओर बढ़ा। एक संगठित समाज की स्थापना, उत्पादन के साधनों पर पुरुषों द्वारा कब्जा करना, संपत्ति संचय की प्रवृत्ति, आदि ने स्त्री-पुरुष में असमानता, आधिपत्य और शोषण की प्रवृत्ति को जन्म दिया। स्त्री पर आधिपत्य की प्रक्रिया में रूढ़िगत सामाजिक संरचनाओं, सांस्कृतिक मूल्य, आर्थिक बाधाओं और राजनीतिक संस्थाओं सहित अनेक कारणों का योगदान रहा है। सामाजिक ढांचे में परिवर्तन लाने के लिए समय-समय पर सामाजिक, धार्मिक, वैज्ञानिक, औद्योगिक और राजनीतिक आंदोलन होते रहे हैं। किन्तु इन आंदोलनों में कोई भी स्त्री की स्थिति में पूर्णता परिवर्तन लाने में सफल नहीं हो सका। स्त्री दासता और असमानता के विरुद्ध स्त्रियों एवं समाज में चेतना का प्रसार निश्चित रूप से हुआ। सोवियत संघ के सेंट पीटर्सबर्ग से 1859 में महिला मुक्ति आंदोलन की धारा विकासमान हुई थीं। 1908 में ब्रिटेन में 'विमेंस फ्रीडम लीग' की स्थापना हुई और 1911 में जापान में महिला मुक्ति आंदोलन का आरंभ

हुआ था। परंतु अंतरराष्ट्रीय स्तर पर महिला आंदोलन की शुरुआत 1951 से माना जा सकता है। जब संयुक्त राष्ट्र महासभा (UN) ने भारी बहुमत से महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों का नियम पारित किया। वर्ष 1975 ई. को पूरे विश्व में अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के रूप में मनाया गया। भारत में भी वर्ष 2001 को महिला सशक्तिकरण वर्ष घोषित करके स्त्रियों को पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक रूप से मजबूत बनाने के लिए कई कानून बनाए गए। स्त्री-सशक्तिकरण का प्रश्न बहुपक्षीय है। यह महिलाओं के मौलिक अधिकारों से जुड़ा हुआ है। यह केवल उनके लोकतांत्रिक अधिकारों की सुरक्षा ही नहीं करता। किन्तु सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, वैयक्तिक, सामूहिक, वैश्विक सभी क्षेत्रों में अवसर की समानता से संबंधित है।

२.१ विमर्श: कोश गत अर्थ

'विमर्श' शब्द वि+मृश धातु के योग से बना है। जिसका अर्थ है-वितर्क, विचार, विवेचना, समीक्षा, आलोचना, किसी तथ्य का अनुसंधान करना। अन्य शब्दोंकोशो में तथा विभिन्न विद्वानों के द्वारा विमर्श शब्द का अर्थ इस प्रकार है-

1. 'बृहद हिन्दी कोश' के अनुसार विमर्श शब्द का अर्थ है- "विचार, विवेचन, समीक्षा, परीक्षण, तर्क ज्ञान, शिव चरम बिन्दु।"[1]

2. संक्षिप्त हिंदी शब्द सागर में विमर्श से अभिप्राय- "किसी बात की विवेचना, आलोचना, समीक्षा, परीक्षा, परामर्श।"[2]

3. लोकभारती प्रामाणिक हिंदी कोश में विमर्श का अर्थ है "मन में होने वाले अहम भाव की स्पूर्ति, विचार या विवेचन, आलोचना, परीक्षा, जांच, परामर्श।"[3]

4.'Oxford dictionary and thesaurus' के अनुसार विमर्श के समानार्थी शब्द 'Discourse' का अर्थ है- "conversation, lengthy treatment of them, lecture speech"[4]

उपर्युक्त विभिन्न कोशो में 'विमर्श' शब्द के लिए प्रयुक्त विभिन्न अर्थों से यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि 'विमर्श' शब्द का सामान्य अर्थ तर्क-वितर्क, विवेचन, परीक्षण, समीक्षा आदि से लिया जा सकता है।

२.२ विमर्श का पारिभाषिक अर्थ

विभिन्न विद्वानों द्वारा विमर्श शब्द के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए भिन्न-भिन्न परिभाषाएं दी गई है जो इस प्रकार है-

1. डॉ. नगेंद्र के संपादन में प्रकाशित मानवीकी पारिभाषिक कोष में विमर्श की परिभाषा दी गई है- "विमर्श संवाद का एक प्रकार है, जिसमें दो पात्र किसी समस्या पर प्रश्नोत्तर करते हुए वाद-विवाद करते हैं। इसके प्रयोग से जहां विषय में स्पष्टता आती है, वहां रचना प्रवाह अखंडित रहता है।"[5]

2. डॉ. रोहिणी अग्रवाल के अनुसार विमर्श का अर्थ है "जीवंत बहस। किसी भी समस्या या स्थिति को एक कोने से न देखकर भिन्न मानसिकताओं, दृष्टिओं, संस्कारों और वैचारिक प्रतिबद्धताओं का समाहार करते हुए उलट-पुलट कर देखना, उसे समग्रता से समझने की कोशिश करना और फिर मानवीय संदर्भ में निष्कर्ष प्राप्ति की चेष्टा करना। उल्लेखनीय है कि इस प्रक्रिया में निष्कर्ष अंतिम निर्णय की तरफ थोपे नहीं जाते, परंतु उन्हें समय के साथ मुठभेड़ कर नया स्वरूप ग्रहण करने की स्वतंत्रता दी जाती है।"[6]

निष्कर्षत: यह कहां जा सकता है कि विमर्श वह विवेचन, समीक्षा, आलोचना तथा अनुसंधान है, जो किसी निश्चित परिप्रेक्ष्य में किसी समस्या, घटना, तथ्य या स्थिति के विभिन्न पहलुओं को विभिन्न दृष्टिकोण से जांचते पररखते हुए प्राप्त निष्कर्ष है। विमर्श उद्देश्य युक्त होते हैं। अत: संबंधित तथ्यों के प्रति तटस्थता का होना अनिवार्य होता है।

२.३ स्त्री विमर्श: अर्थ

सामान्य रूप से स्त्री विमर्श का अर्थ स्त्रियों से संबंधित विषय में विचार करना है और चिंतन करना है। अर्थात इस तरह का साहित्य जिसमें स्त्रियों के हितों एवं विचारो को विमर्श के केंद्र में रखा जाए।

स्त्री विमर्श से मिलता हुआ एक शब्द 'नारीवाद' (feminism) प्रचलित है। जिसे अंग्रेजी में 'फेमिनिज्म' भी कहां जाता है। जो 'स्त्री+वाद' से मिलकर निर्मित हुआ है। लैटिन में स्त्री को 'फेमिना' कहते हैं। इसी शब्द से 'फेमिनिज्म' स्त्रीवाद बना है। स्त्री-अधिकारवादी दृष्टिकोण से इस शब्द का प्रयोग १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से होने लगा था। यहीं से यह शब्द स्त्री मुक्ति से जुड़ता है। हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली में डॉ.अमरनाथ ने स्त्री विमर्श के लिए 'नारीवाद' शब्द का प्रयोग करना उचित मानते हैं- "पुरुषों के समकक्ष स्त्रियों की राजनीतिक, सामाजिक और शैक्षणिक समानता का आंदोलन, जिसे कुछ वर्ष पहले तक नारीवाद कहा जाता था। अंग्रेजी में इसके लिए 'फेमिनिज्म' शब्द प्रचलित है। इस दृष्टि से इसके लिए 'नारीवाद' नाम ही ज्यादा सार्थक है।"[7] वे नारीवाद को एक व्यापक विषय के रूप में स्वीकारते है- "नारीवाद का संबंध स्त्रियों से जुड़े सवालों से ही है। लेकिन नारीवाद इन्हीं सवालों तक सीमित नहीं है। नारीवादियों की चिंतन का घेरा पत्नी प्रताड़ना, फैमिली प्लानिंग एवं समान वेतन की संकोचित परिभाषा में सिमटा हुआ नहीं है। इसमें से अनेक का विश्वास है कि संसार के हर मसले का संबंध स्त्रियों से है क्योंकि हर बात तथा हर घटना उन्हें पूर्ण रूप से प्रभावित करती है। वह स्त्री होने के साथ-साथ मनुष्य है, दुनिया की आधी आबादी है, इसलिए हर विषय उन से संबंध रखता है। नारीवादी सभी प्रकार की असमानता, दबाव तथा दमन हटाकर राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय रूप से समतामूलक मुक्त समाज की स्थापना करना चाहते हैं। अतः सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी मुद्दे उसके अपने हो जाते हैं। प्रत्येक मुद्दे पर स्त्रियों का एक दृष्टिकोण है और रहेगा और नारी चाहती है

कि व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को उसको नारीवाद दृष्टिकोण से जोड़ा जाए।"[8]

स्त्री विमर्श एक प्रकार से व्यापक अवधारणा है। अतः इसे किसी निश्चित परिभाषा की सीमा में बांधना संभव नहीं है फिर भी विभिन्न विद्वानों ने इसके स्पष्टीकरण के लिए अनेक परिभाषाएं दी है, जिनसे हमें नारी विमर्श के स्वरूप को समझने में सहायता मिलती है। नारी विमर्श के संबंध में कई विद्वानों के मत प्रस्तुत है- सुमन राजेश स्त्री विमर्श को स्त्री के आत्मबोध, आत्मविश्लेषण तथा आत्माभिव्यक्ति का संघर्ष बताती है, जो आंतरिक और बाहरी दोनों स्तरों पर समान रूप से घटित हुआ है। उनके अनुसार, "बीसवीं सदी के मुक्ति संघर्षों में स्त्री का मुक्ति संघर्ष शायद सबसे अधिक गुलामी और सार्वभौमिक रहा है। सबसे अधिक अहिंसक, रक्त हीन और सर्वग्राही भी। इस संघर्ष की व्यापकता का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि यह जितना अधिक बाहरी स्तर पर संगठित और गठित हुआ है उतना ही आंतरिक स्तर पर भी। यह एक साथ आत्मसंघर्ष भी रहा है, आत्मबोध, आत्मविश्लेषण और आत्माभिव्यक्ति का संघर्ष भी। दर्शनशास्त्र, मनोविज्ञान, समाज विज्ञान, इतिहास जैसी अनेक विधाएं इस संघर्ष पर एकाग्र हुई है और स्त्री के मुक्ति का संघर्ष का एक समुद्रशास्त्र विकसित हुआ जिसे समग्र रूप से स्त्री विमर्श कह दिया जाता है।"[9]

प्रभा खेतान के अनुसार -"स्त्री विमर्श के केंद्र में जो कि स्त्री है इसलिए पितृसत्ता द्वारा अर्जित और प्रचारित ज्ञान को यह अस्वीकार करता है। नारीवाद पारंपरिक ज्ञान और दर्शन को चुनौती देता है। ऐतिहासिक रूप से हम पुरुष प्रधान समाज में रहते आए हैं। जहां स्त्री ज्ञाता नहीं बल्कि ज्ञान की विषय वस्तु है। हम जिसे यथार्थपरक ज्ञान या वस्तुपरक ज्ञान कहते हैं, वास्तव में वह पुरुषों द्वारा निर्मित एवं उत्पादित ज्ञान है। इसी ज्ञान को पुरुष सत्ता ने केंद्र में अधिष्ठित किया है। इसके विपरीत नारीवादी सिद्धांत स्त्री केंद्रित ज्ञान की चर्चा करता है।"[10]

तस्लीमा नसरीन का कहना है कि “नारीवाद स्त्री मुक्ति का वह संघर्ष है जो सभी स्त्रियों को बिना किसी भेदभाव के एक मनुष्य समझे जाने का आग्रह करता है। उनके अनुसार नारीवाद की संज्ञा का कहीं कोई अंत नहीं। नारीवाद एक राजनीतिक थ्योरी और प्रैक्टिकल है जो औरत को मुक्त करने के संग्राम में लिप्त है। क्या कभी नारियों की मुक्ति ? हां काली, सांवली, पीली सभी वर्णों की नारी! मेहनतकश नारी, दरिद्र नारी, पंगु नारी वृद्ध नारी। सिर्फ इतना ही नहीं-साधारण,घनी, असमाकामी सभी सभी नारियां।......नारीवाद की और एक आसान संज्ञा है- औरत भी इंसान है, इस बात पर जोर देकर कहना। फेमिनिज्म इज ए रेडिकल नोशन दैट वीमिन आर ह्यूमन बीइंग्स।”[11]

स्त्री विमर्श की उपर्युक्त व्याख्याओं के आधार पर कहा जा सकता है कि भारतीय पक्ष में रची स्त्री विमर्श की अवधारणा पश्चिम देश से आयातित न होकर यहां की परिस्थितियों की ही उपज है। ऐसी परिस्थितियां जिन्होंने स्त्री के व्यक्तित्व पर इतनी कसावट बना दी कि वह मुक्त होने के लिए छटपटा ने लगी। पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने स्त्री के समस्त अधिकारों का हनन करके उसे मात्र उपभोग की वस्तु बना दिया है।

२.४ स्त्री विमर्श का इतिहास

भारतीय समाज में स्त्री अनादि काल से पितृसत्तात्मक समाज में बंदि रही है। स्त्री के प्रति सामाजिक व्यवस्था का रूप परंपरागत रूप से आदर्श की नियति व्यवहार में निश्चित मापदंड से परिचालित होता रहा है। जिसके कारण स्त्री को हर रोज जीवन में प्रतिबंध झेलने पड़े हैं। पुरुष उन प्रतिबंधों की कल्पना मात्र कर सकते हैं जो प्राय:प्रासंगिक और एक पक्ष से ही होता रहा है। मर्यादा के नाम पर पुरुषों के अत्याचार एवं अन्याय सहना उसकी नियति बन गई थी। यौनशुचिता और मर्यादा के नाम पर बचपन में पिता, किशोरावस्था में भाइयों, युवावस्था में पति एवं बुढ़ापे में बेटों की अधीनता लंबे समय तक भौतिक, सामाजिक, आर्थिक,

भावात्मक परावलंबन स्त्री जीवन का केंद्रीय वास्तविकता रही है। लेकिन ऐसा भी नहीं है कि स्त्री की यह शाश्वत स्थिति रही है कुछ ऐतिहासिक तथ्य प्राप्त होते हैं कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था से पूर्व आदिम कबीलाई अवस्था में कहीं-कहीं पर मातृसत्तात्मक समाज था। जिसमें स्त्री न केवल पूज्य थी बल्कि वह परिवार की धुरी थी।

मातृसत्तात्मक परिवार का सर्व सामान्य अर्थ है- इस तरह का परिवार जिसमें सत्ता स्त्री की हो अर्थात ऐसा समाज जिसमें स्त्री का वर्चस्व हो। उसे निर्णय लेने का संपूर्ण अधिकार हो। इस शब्द का समकालीन अर्थ इस प्रकार मिलता है- ऐसा परिवार जिसमें मां यानी स्त्री के हाथ में संपत्ति एवं परिवार के सारे निर्णय लेने के अधिकार हो। आज की स्त्री शिक्षित है। आर्थिक रूप से समर्थ है तथा बौद्धिक रूप से सबल है। इसने स्थापित एवं रूढ़िग्रस्त मूल्यों मापदंडों को तोड़ा है। कोई भी विखंडन से हमेशा विनाश ही नहीं होता। नया अस्मिताबोध और उससे उपजी चेतना सर्जनात्मक है। स्त्री विमर्श के स्वरूप को पूर्णतया स्पष्ट करने के लिए विभिन्न कालों और विचारधाराओं के अंतर्गत स्त्री जीवन की विकास यात्रा को जानना अत्यंत आवश्यक है।

२.५ भारतीय पक्ष में स्त्री विमर्श का इतिहास

हमारे देश का एक प्राचीन इतिहास रहा है यहां की सभ्यता प्राचीन सभ्यताओं में गिनी जाती है। इतिहास के विभिन्न चरणों में स्त्री की स्थिति में भिन्नता रही है। प्रागैतिहासिक काल से आधुनिक काल तक पहुंचते-पहुंचते स्त्री ने अपने जीवन में उल्लेखनीय चरणों को पार किया है। इतिहास के विभिन्न कालो में स्त्री की स्थिति में उत्तरोत्तर परिवर्तनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन इस प्रकार किया जा सकता है-

२.६ प्रागैतिहासिक काल में स्त्री की स्थिति

प्रागैतिहासिक काल हमारी सभ्यता का शुरुआती काल रहा है। इस काल में स्त्री की स्थिति का मूल्यांकन प्राप्त पुरातत्व अवशेषओ के आधार पर और आनुवांशिकता (DNA) के आधार पर किया जा सकता है। इतिहासकारों के अनुसार तत्कालीन समाज जो था वह मातृसत्तात्मक था। जिसमें स्त्री की स्थिति पुरुष के बराबर नहीं किन्तु उससे भी श्रेष्ठत्म थी। वह पूजनीय थी और परिवार की केंद्र बिंदु रूप में थी। सारी संपत्ति और परिवार के संबंध में निर्णय लेने का अधिकार स्त्री के पास रहता था। समाज घुमक्कड़ जातियों के रूप में था। पशुपालन मुख्य पैशा होने से पुरुष पशुओं के झुंड लेकर जंगलों में भटकते तो स्त्रियां घर और बच्चों की देखभाल करती थीं। इस संदर्भ में सीमोन द बोउआर का मत है कि "प्रागैतिहासिक यायावर समाज में शारीरिक कमजोरी के बावजूद औरत पुरुष की इतनी अधीनस्थ नहीं थी कि वह गुलाम कहीं जाए। उन दिनों पुरुष के सम्मुख स्त्री को समर्पण के लिए विवश करने वाली न कोई संस्थागत न व्यवस्थागत संपत्ति की अवधारणा और न कोई न्याय व्यवस्था थी"[12] समग्र रूप से कहा जा सकता है कि प्रागैतिहासिकाल में स्त्री की स्थिति सम्मानीय और जीवन के सभी पहलुओं के लिए विशेषाधिकार संपन्न थी।

२.७ वैदिक काल में स्त्री की स्थिति

भारतीय संस्कृति के वैदिक काल में नारी की प्रतिष्ठा को पुरुष के समान ही स्वीकार किया गया है। नारी शिक्षा की व्यवस्था के परिणाम स्वरूप ही इस काल में अनेक विदुषी स्त्रियों का प्राकट्य हुआ था। शिक्षा, ज्ञान, यज्ञ आदि विभिन्न क्षेत्रों में वह निर्विरोध स्वच्छंदतापूर्वक सम्मिलित होती थी और सम्मान पूर्वक आदर प्राप्त करती थी। इस युग में अनेक विदुषी स्त्रियां थी, जिन्होंने ऋग्वेद और अन्य वेदों की अनेक रचनाओं का प्रणयन किया था। लोपामुद्रा, गार्गी, अपाला,

घोषा, मुद्गलानी, विश्ववारा आदि ऐसी ही पंडित स्त्रियां थी। समाज में वे पुरुषों की तरह ही आदरणीय और सम्मानीय थी।

नारी जीवन के कुछ अच्छे दृश्यों से यह नहीं समझा जाना चाहिए कि वैदिक काल में समग्र स्त्रियों की स्थिति सम्मानजनक थी। वैदिक समाज मुख्य रूप से पितृसत्तात्मक ही था। जिसमें पुत्रों को पुत्रियों से ज्यादा महत्व दिया गया था। पुत्र कामना, बहु विवाह, दासी प्रथा की शुरुआत यहीं से होती है। स्त्री अब दान की वस्तु मात्र बनने लगी थी। युद्ध में बंदी बनाकर लाई गई स्त्रियों से जब अंत:पुर भर जाता था तो रथ भर-भर कर स्त्रियां पुरोहितों एवं ऋषियों को दान में दे दी जाती थी। अतः वैदिक काल में स्त्री की दशा सामाजिक, धार्मिक दृष्टि से अच्छी थी किन्तु यह समस्त स्त्रियों के लिए नहीं था। युद्ध में जीती गई स्त्रियां एक वस्तु मात्र थी, दासी थी।

२.८ उपनिषद काल में स्त्री की स्थिति

वैदिक काल में प्राप्त स्त्री की उच्च एवं सम्मानीय स्थिति थी। वह उपनिषद काल में तीव्रता से पतन की ओर उन्मुक्त हुई थी। इस काल में वैदिक काल के समान ना तो सभी को शिक्षा ग्रहण करने के लिए गुरुकुल भेजा जाता था ना ही धर्म और समाज में उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी। अपवादरूप विदुषी स्त्रियों को छोड़कर ज्यादातर स्त्रियों को विवाहोपरांत गृहस्थ जीवन का निर्वाह करना पड़ता था। पुत्री का जन्म इस काल में चिंता का विषय बनना आरंभ हो गया। समाज में जाति-पाति, छुआछूत, बहुपत्नी प्रथा तथा बाल विवाह जैसी अनेक कुरीतियों के जन्म लेने के कारण स्त्री की स्थिति बदतर होती चली गई थी। इस काल में उनका कोई अलग अस्तित्व नहीं था। वह केवल पुरुष की अनुगामिनी थी। पुरुष का आधिपत्य सर्वत्र था।

२.९ रामायण एवं महाभारत काल में स्त्री की स्थिति

रामायण एवं महाभारत काल में महिलाओं की स्थिति विदुषियों के रूप में बहुत कम और तप, त्याग, नम्रता और पतिव्रता आदि गुणों से युक्त गृहिणी के रूप में दिखती है। रामायण काल में एक धोबी के संदेह व्यक्त करने मात्र से सीता माता को गर्भावस्था की स्थिति में वनवास भेज देना तथा महाभारत काल में द्रोपदी को जुए में दांव पर लगा देना यह स्पष्ट करता है कि स्त्री वस्तु मात्र ही थी। पति अधिकारपूर्ण था और पत्नी के साथ मनचाहा व्यवहार कर सकता था। फिर भी उस काल में कन्याओं और स्त्रियों को घृणा भाव से नहीं देखा जाता था। उनके लिए स्वयंवर के द्वारा योग्य पति की तलाश की जाती थी। परन्तु उनके सामाजिक, आर्थिक और वैयक्तिक स्वतंत्रता पर अंकुश लगा दिए गए थे। इस काल की स्त्री पूज्य एवं आदरणीय होते हुए भी पुरुष से निम्न थी। जैसे की सीता, द्रोपती।

जैन एवं बौद्ध में स्त्री विषयक दृष्टिकोण में विरोधाभास दिखाई देता है। जैन धर्म में मां के रूप में स्त्री को सम्मानीय स्थान दिया गया। वहीं दूसरी ओर पुरुषों के जीवन में मोक्ष प्राप्ति में रुकावट का कारण भी नारी को माना गया था। जैन धर्म के १९वें तीर्थकर मल्लीनाथ एक स्त्री होने के बावजूद स्त्री के प्रति उनका दृष्टिकोण घृणित रहा था। उन्होंने स्त्री जीवन को हमेशा ही व्यर्थ बताया। जैन धर्म एवं तत्कालीन हिंदू धर्म में स्त्रियों पर अनावश्यक नियंत्रण, पतिवर्ता होने का आरोपण, धार्मिक कर्मकांड तथा बाह्य-आडंबरों के प्रतिक्रिया स्वरूप स्त्रियों ने बौद्ध धर्म का आश्रय ग्रहण किया था। आरंभ में महात्मा बुद्ध भी स्त्रियों को संघ में दीक्षित कराने के पक्ष में नहीं थे। उनका मानना था- नारी के प्रवेश से संघ की आयु क्षीण हो जाएगी। वह सहस्त्र वर्ष जीने के बदले ५०० वर्ष भी नहीं जी पाएगा। उन्होंने सर्वप्रथम गौतमी बाद में अपनी पत्नी यशोधरा तथा गणिका आम्रपाली सहित अनेक उत्पीड़ित स्त्रियों को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया था। इन बौद्ध भिक्षुणियों की जीवन गाथा का वर्णन 'थेरी गाथा'में किया गया हैं। महात्मा

बुद्ध के निर्वाण के पश्चात बौद्ध धर्म का स्वरूप विकृत हो गया था। मठ बौद्ध भिक्षुणीओ के शोषण का केंद्र बन गया था। बाद में वज्रयाणियो के समय में नारी का भोग्या रूप छोड़ कोई रूप सामने नहीं आया।

२.१० मध्ययुग में भारतीय नारी की स्थिति

भारतीय इतिहास में स्वर्णयुग कहा जाने वाला मध्यमयुग स्त्रियों के साथ सम्मानजनक व्यवस्था स्थापित न कर सका। मध्यकाल के साहित्य से सिद्ध होता है कि इस काल में स्त्री का सौंदर्य जहां काव्य की शोभा बढ़ाने का कारण बना वहीं देश के अनेक राजाओं के अनावश्यक रूप से आंतरिक एवं बाह्य युद्ध लड़ने का भी कारण बना।

भारत पर मुसलमान शासकों के आक्रमण तथा मुगलों की शासन व्यवस्था के बाद यहां की स्त्रियों की दशा में दयनीय स्थिति पैदा हुई थी। मुसलमान आक्रमणकारियों से अपनी पुत्रियों की रक्षा हेतु बाल-विवाह तथा पर्दाप्रथा जैसी कुरीतियों का प्रसार हुआ। मध्यकाल में हिंदू धर्म में सतीप्रथा चरम स्थिति को प्राप्त थी। इन सभी कुरीतियों से स्त्री-शिक्षा और स्वतंत्रता पूर्णता समाप्त हो गई थी। मध्यकाल में स्त्री की दयाजनक स्थिति का चित्रण करते हुए आशारानी वोहरा लिखती है-“यह दमन चक्र 10 वीं शताब्दी में भारत पर विदेशियों के आक्रमणों के साथ चलना शुरू हुआ था, 16 वीं शताब्दी में मुगलों के भारत आगमन के साथ गतिशील हुआ और 19वीं शताब्दी तक अपने चरम सीमा पर पहुंच गया था।”[13]

२.११ आधुनिक युग में नारी की स्थिति

आधुनिक युग नारी की स्थिति के लिए एक क्रांतिकारी युग कहा जा सकता है। आधुनिक युग की शुरुआत १९वीं शताब्दी के आरंभ से स्वीकार किया जा सकता है। देश की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों में व्यापक बदलाव के साथ ही स्त्रियों की दशा में भी क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। ब्रिटिश हुकूमत ने

भारत की लोकतंत्र व्यवस्था तथा आर्थिक व्यवस्था को पूरी तरह से तोड़ दिया था। लेकिन अंग्रेजी साहित्य और पाश्चात्य विचार धाराओं का सकारात्मक प्रभाव भी भारतीय समाज पर पड़ रहा था। पाश्चात्य प्रभाव के कारण कुरीतियों, अंधविश्वासों और रूढ़ियों के बंधन टूटे और स्त्रियों की स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त हुआ। ईसाई मिशनरियों ने भारतीय स्त्री जीवन में व्याप्त कुरीतियों की ओर भारतीय समाज सुधारकों का ध्यान केंद्रित किया था। समाज सुधारकों में राजा राममोहन राय जैसे चिंतकों एवं समाज सुधारकों के सकारात्मक प्रयासों से विधवा विवाह का समर्थन तथा बाल विवाह, सती प्रथा का निषेध आदि कुरीतियों समाप्त हुई थी।

महाराष्ट्र के महान चिंतक महादेव गोविंद रानाडे ने नारी शिक्षा के लिए बहुत महत्वपूर्ण प्रयास किया था। महिलाओ की दशा में सुधार लाने में दयानंद सरस्वती का भी योगदान महत्त्वपूर्ण है। दयानंद सरस्वती ने सन् 1875 में 'आर्य समाज' की स्थापना के साथ लोगों को वैदिक युगीन व्यवस्था की ओर ध्यान आकृष्ट कराते हुए वैदिक युगीन स्त्री की सम्माजनक स्थिति को आदर्श के रूप में रखा और स्त्रियों की शिक्षा एवं विवाह के समानाधिकार पर बल दिया था और विधवाओं के पूर्णविवाह हेतु समाज में जागृति उत्पन्न की। स्वामी विवेकानंद ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना द्वारा स्त्री की स्वतंत्रता के लिए समाज में जागरूकता फैलाई थी। इनके अतिरिक्त गोपाल कृष्ण गोखले, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, पंडित रमाबाई आदि ने स्त्री की स्थिति को सुधारने के लिए स्त्री शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया तथा सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध आवाज उठाई। स्त्रियों की चेतना को जागृत करने में 'थियोसॉफिकल सोसायटी' की एनी बेसेंट एवं स्वामी विवेकानंद की शिष्या निवेदिता का योगदान भी अतुलनीय है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (INC)की प्रथम महिला अध्यक्ष का गौरव हासिल करने वाली सरोजिनी नायडू ने स्त्रियों के लिए चुनाव लड़ने एवं स्त्रियों के लिए मताधिकार की मांग उठाई।

स्त्री शिक्षा और नारी जागरण की दिशा में गांधीजी ने अतुलनीय योगदान दिया था। गांधीजी के आह्वान पर सन 1919 ई. के असहयोग आंदोलन में महिलाओं ने बढ़-चढ़कर भाग लिया था और अपनी शक्ति से सबको आश्चर्यचकित कर दिया था। असहयोग आंदोलन ऐसा प्रथम देशव्यापी आंदोलन था। जिसमें गांधीजी के आह्वान पर पहली बार पुरुषों के साथ महिलाओं ने भाग लिया था। गांधीजी स्वतंत्रता संघर्ष में विजय प्राप्ति के लिए स्त्रियों की भागीदारी अनिवार्य मानते थे। स्त्रियों के सहयोग के बिना स्वतंत्रता प्राप्ति उन्हें कठिन ही नहीं परन्तु असंभव लगने लगी थी। इसीलिए 1930 के नमक सत्याग्रह में उन्होंने खुले शब्दों में स्त्रियों को आंदोलन में शामिल करने हेतु आमंत्रित किया था। गांधीजी के आह्वान के प्रत्युत्तर में लाखों स्त्रियां आंदोलन में कूद पड़ी थी। इस प्रकार सभी बंधनों एवं रूढ़ियों को त्याग कर स्त्रियों ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया था और पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर साथ दिया था।

आज़ादी के बाद भी महिलाओं ने देश के नवनिर्माण में अपना शत-प्रतिशत योगदान दिया था। संविधान निर्माण में हंसा बहन मेहता, रेणुका रे और दुर्गाबाई आदि ने स्वतंत्रता सेनानी महिलाओं ने भाग लिया था। संविधान ने भी स्त्री-पुरुष के भेदभाव को मिटा कर दोनों को समान रूप से वैयक्तिक, शैक्षणिक, सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकार प्रदान किए। संविधान द्वारा दिए गए यह अधिकार सदीयों से शोषित, पीड़ित स्त्रियों को पुरुषों के समकक्ष समानता प्रदान करता है। हमारे संविधान ने राजनीति में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने तथा उनके व्यक्तित्व के विकास के लिए संसद में ३३%, गांव में पंचायत स्तर पर ५०% तथा सरकारी नौकरी में ३३% आरक्षण प्रदान किया गया है।

आज़ादी प्राप्ति के कई दर्शकों के बीत जाने और क्रमश: अनेकानेक सुधारात्मक कदम उठाए जाने के बाद भी स्त्री अपने जीवन का निर्णय लेने के मामले में पूर्णरूप से आज भी आत्मनिर्भर नहीं है। अभी भी पुरुष वर्चस्व तथा रूढ़ीवादी परंपराओं की बेड़ियों ने उसे कहीं न कहीं जकड़ रखा है। इसीलिए स्त्री अपने

व्यक्तित्व की मुक्ति के लिए आज भी संघर्षरत है। इस प्रकार आधुनिक युग में स्त्री का अपने वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों के लिए निरंतर प्रयासरत है। अतः कहा जा सकता है कि प्रागैतिहासिक काल तथा वैदिक काल के पश्चात स्त्री की सामाजिक स्थिति में निरंतर गिरावट आई है। परंतु आधुनिक युग में स्त्री की स्थिति में धीरे-धीरे परिवर्तन आ रहा है।

१९वीं सदी के आरंभ तक भारतीय जनमानस अंग्रेजों की गुलामी के साथ-साथ अनेक सामाजिक कुरीतियों, अज्ञानता, दासता, शोषण और भयानक गरीबी से ग्रस्त था। भारत में सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना का विकास इस सदी में साथ हुआ था। पितृसत्तात्मक समाज में भारतीय नारी जो सदियों से पुरुषों द्वारा प्रदत अवस्थाओं और पतनोन्मुख समाज की स्थितियों के कारण दबे कुचले वर्ग में रखी जाती थी। प्राय: समाज सुधार आंदोलनों का आधार बनी। १९वीं सदी के आरंभ में समाज की बेहतर स्थिति में सुधार के अगुआ के रूप में राजा राममोहन राय आगे आए थे। भारतीय समाज को जागरूक करने और उसमें सुधार लाने के लिए शिक्षा की अनिवार्यता पर उन्होंने जोर दिया था। मुख्यरूप से स्त्री शिक्षा की जरूरत उन्होंने से महसूस की। उदारतावाद और मानवतावाद के साथ कार्य करने और समाज में नारी की स्थिति एवं स्थान निर्धारित करने के लिए उन्होंने लोगों का आह्वान किया। सन् १८१५ में 'आत्मीय सभा' एवं सन् १८२८ में इन्होंने 'ब्रह्म समाज' की स्थापना की थी। अपनी पत्रिका 'संवाद कौमुदी' के माध्यम से उन्होंने सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ आवाज उठाई थी। उन्होंने बाल विवाह, सती प्रथा और बहुपत्नी प्रथा का विरोध किया तथा उनका पूर्णरूप से अंत करना चाहा। विधवाओं के पूर्णविवाह पर इनका प्रबल प्रयास रहा। राजा राममोहन राय ने अपने अंग्रेज मित्र विलियम बैटिंग की सहायता से 4 दिसंबर, 1829 को सती प्रथा पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। स्त्री-सशक्तिकरण के संदर्भ में राजा राममोहन राय का योगदान अविस्मरणीय है। आधुनिक भारत में स्त्री की पराधीनता पर सोचने वाले पहले व्यक्ति थे राजा राममोहन राय।

राजा राममोहन राय के बाद स्त्री दशा सुधारने में प्रशंसनीय प्रयास करने में केशवचंद्र सेन का योगदान महत्वपूर्ण है। वह स्त्री शिक्षा, प्रोढ शिक्षा, तकनीकी शिक्षा और समाज सुधार के हिमायती थे। वे इस बात को भली-भांति जानते थे कि आम जनता की स्थिति एवं स्त्री की स्थिति में सुधार होने पर ही देश की प्रगति और विकास संभव है। उन्होंने स्पष्ट कहा था कि हमारी स्त्रियों की स्थिति सोचनीय और दयनीय है। इस पर गंभीरता से विचार करने की जरूरत है। इतिहास में ऐसा कोई देश नहीं है जिसकी महिलाएं अज्ञान के गर्त में हो और वह देश उन्नति कर गया हो। यदि भारत की हैसियत अन्य राष्ट्रों के समकक्ष ऊपर उठाने की हमारी भीतर की इच्छा है तो हमें अपनी महिलाओं को अज्ञान एवं अंधकार के जाल से बाहर निकालना होगा। इन्होंने सन् 1863 में 'ब्रह्म बंधु सभा' के तत्वाधान में घर पर महिलाओं के लिए शिक्षा की व्यवस्था की। उसी साल महिलाओं के लिए 'ब्रह्म बोधिनी' पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया था। महिलाओं के लिए टीचर ट्रेनिंग कॉलेज खोलना, विधवा विवाह के लिए मंचन द्वारा जन-जागरूकता कार्यक्रम चलाना अन्य उल्लेखनीय कार्य किए थे।

स्त्री जीवन के अधिकारों की लड़ाई में उल्लेखनीय नाम बंगाल के महान व्यक्ति ईश्वरचंद्र विद्यासागर जी का है। वे हमेशा स्त्री-पुरुष के भेदभाव के खिलाफ रहे। उन्होंने बखूबी समझ लिया था कि स्त्रियों की दुर्दशा के लिए मुख्य कारण अशिक्षा, बहुविवाह तथा बाल विवाह की प्रथा है। उन्होंने स्त्रियों की स्थिति के बारे में लिखा है- "स्त्रियां अबला है और सामाजिक ढांचे से उन्हें कम सुविधा प्राप्त है और दलित वर्ग के लोगों की तरह दिन काटने पड़ते हैं......... संसार भर में स्त्री की स्थिति तो लगभग ऐसी ही है। लेकिन इस दुर्भाग्यपूर्ण देश में पुरुष की निर्दयता, स्वार्थ और मूर्खता के कारण उत्पन्न स्थिति का अन्य कोई समानांतर उदाहरण नहीं मिलता।"[14] इनके प्रयास से ही 7जुलाई 1856 को हिंदू विधवा पूर्णविवाह का अधिकार प्राप्त हुआ था।

भारतीय समाज के नवजागरण में दयानंद सरस्वती का योगदान महत्वपूर्ण रहा था। स्त्री-पुरुष समानता के समर्थक दयानंद सरस्वती का मानना था कि स्त्री के सम्मान के बिना प्रगति असंभव है और स्त्री का सम्मान अशिक्षा, बाल विवाह जैसी सामाजिक समस्याओं से निजात पाए बिना नहीं मिल सकता है। उन्होंने मुंबई में सन् 1875 मे 'आर्य समाज' की स्थापना की थी। उन्होंने स्त्रियों को वेदों के अध्ययन की स्वतंत्रता प्रदान की थी। आर्य समाज की ओर से गुरुकूलो और कन्या पाठशालाओं की स्थापना की गई थी। उनका उद्‌देश्य था कि शिक्षित महिला घर और बाहर कामयाब रहे। 'सत्यार्थ प्रकाश' में दयानंद सरस्वती ने माना कि- 'जब स्त्री और पुरुष अर्थात मनुष्य मात्र को पढ़ने का अधिकार है। जो स्त्रियों के पढ़ने का निषेध करते हो वह तुम्हारी मूर्खता, स्वार्थता का प्रभाव है...जैसे पुरुषों को व्याकरण, धर्म और अपने व्यवहार की विद्‌या न्यून से न्यून अवश्य पढ़नी चाहिए वैसे स्त्रियों को भी व्याकरण धर्म, गणित, शिल्प विधा तो अवश्य सीखनी चाहिए।'

महाराष्ट्र की दलित जातियों में से एक माली परिवार में जन्मे ज्योतिबा फुले तथा उनकी पत्नी सावित्रीबाई फुले विशेषकर दलितों एवं स्त्रियों की दशा सुधारने में अपना जीवन न्योछावर कर दिया था। बचपन के अनुभव से उन्हें ज्ञात हुआ की शुद्र वर्ण के पुरुषों एवं महिलाओं की हीन स्थिति का एकमात्र कारण ब्राह्मणों द्‌वारा बनाई गई सामाजिक व्यवस्था है जिसमें हर प्रकार की अमानवीयता है।

देश में विधवाओं का जीवन शापित था। विधवाओं के साथ किए जाने वाले पशुवत व्यवहार की ओर उन्होंने लोगों का ध्यान आकर्षित किया था। उनकी हालत सुधारने का भरपुर प्रयास किया था। विधवाओं की स्थिति सुधारने के लिए उन्होंने अंग्रेजी सत्ता से अपील की थी- 'निष्कर्षत: मैं अंग्रेजी शासन से यह निवेदन करता हूं कि वैदिक धार्मिक कठोर विधान से इन विधवाओं को मुक्त कराये। वैदिक रीति-रिवाज का पक्षपात इससे स्वत:सिद्‌ध होता है कि अगर विधवाओं को पूर्णविवाह का अधिकार नहीं है तो विधुरो को यह अधिकार क्यों?

इनकी धर्मपत्नी प्रथम शिक्षिका बनी तथा स्त्रियों की शिक्षा के लिए अनेक स्कूल खुलवाए गए थे। उन्होंने अंग्रेजी शासन से मुक्त शिक्षा व्यवस्था की अपील की जिससे बिना व्यवधान के और नि:शुल्क शिक्षा अर्जित की जा सके। ज्योतिबा ने स्त्री समानता के लिए नई विवाह विधि बनाई। वह कन्या के अनुमति के बिना विवाह न रखने के पक्षधर थे। वे चाहते थे कि विवाह व्यवस्था में पुरुष प्रधान संस्कृति के समर्थक और स्त्री के गुलामगीरी सिद्ध करने वाले जितने मंत्र है, वे सारे निकाल दिए जाए। उन्होंने ऐसे मराठी भाषा में मंत्रों की रचना की जिससे वर-वधू आसानी से समझ सके। ज्योतिबा फुले के मृत्यु के बाद इनकी धर्मपत्नी सावित्रीबाई फुले ने इनके सामाजिक सुधार कार्यों को आगे बढ़ाया था। इन्होंने विधवाओं की संतानों के संरक्षण हेतु बालगृह की स्थापना की। ज्योतिबा द्वारा स्थापित 'सत्यशोधक समाज' कुशल नेतृत्व करते हुए और स्त्री आंदोलन को धार देती हुई यह महान विभूति 10 मार्च सन् 1897 को अमर गति प्राप्त हुई थी।

स्त्री-पुरुष समानता को स्थापित करने, स्त्री को सामाजिक बेड़ियों से मुक्ति दिलाने हेतु स्वामी विवेकानंद ने सतत प्रयास किया था। एक दार्शनिक के तौर पर विवेकानंद जी ने स्त्रियों के उद्धार के लिए समाज में आमूल परिवर्तन लाने पर बल दिया था। वे स्त्री और पुरुष को देश रूपी गाड़ी के दो पहिए मानते थे। देश की प्रगति के लिए दोनों पहिए स्वस्थ, शिक्षित और सफल होने चाहिए। ऐसा उनका मानना था। स्त्रियों को ऐसी शिक्षा देने के लिए पक्षधर थे जिससे कि उनका चरित्र निर्माण हो सके और मानसिक तथा बौधिक विकास होने से स्वावलंबी बन सके और स्वयं निर्णय लेने में सक्षम हो सकें। आधुनिक भारत के स्त्री मुक्ति आंदोलन ने निश्चित रूप से विवेकानंद के क्रांतिकारी विचारों से प्रेरणा ली है।

सामाजिक अनुभव तथा स्वतंत्रता संघर्ष की कार्य योजना के अंग के रूप में महात्मा गांधी के स्त्री मुक्ति संबंधी विचार महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करते हैं। उनके विचार आदर्शवादी, सुधारवादी और सत्य, अहिंसा के प्रयोगों पर आश्रित है। उनके आह्वान पर ही स्वतंत्रता संघर्ष में कई स्त्रियों ने भाग लिया। स्वयं इनकी पत्नी

कस्तूरबा गांधी के अतिरिक्त सरोजिनी नायडू, दुर्गाबाई देशमुख, विजया लक्ष्मी पंडित, सुचेता कृपलानी, सुशीला नैयर जैसी अनेक महान महिलाओं ने गांधी जी की प्रेरणा से राष्ट्रीय संग्राम में भाग लिया था, जिससे उनके स्वयं के आत्मबल का आश्चर्यजनक रूप में बोध हुआ। स्त्री शिक्षा और स्त्रियों में स्वावलंबन का बोध जगाने में गांधी जी ने ऐतिहासिक कार्य किया और अछूतोद्धार और शराबबंदी जैसे सुधार कार्यों की सफलता स्त्रियों की व्यापक भागीदारी के कारण ही संभव हो सके। समाज में व्याप्त दहेज प्रथा का समाप्त करने की जरूरत उन्होंने महसूस की थी। गांधी जी का चिंतन मनुष्य की अस्मिता, गौरव, स्वतंत्रता पर केंद्रित रहा है। राजनीति क्षेत्र में स्त्रियों को सक्रिय रूप से जोड़कर भारतीय सामाजिक जीवन में गांधी जी ने युगांतर उपस्थिति किया है। उन्होंने स्त्री समस्या को जन आंदोलन का अंग बनाया था।

निष्कर्षत: भारतीय समाज सुधारकों में राजा राममोहन राय से प्रारंभ होकर स्वामी दयानंद सरस्वती, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, स्वामी विवेकानंद, ज्योतिबा फुले एवं सावित्रीबाई फुले, महात्मा गांधी के अतिरिक्त गोविंद रानाडे, बाल गंगाधर तिलक, एनी बेसेंट और बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर आदि ने भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों को जन आंदोलन का विषय बिंदु बनाकर उनका उन्मूलन किया, जिससे स्त्री-सशक्तिकरण की भावना को बल मिला और आगे चलकर इसी से स्त्री मुक्ति आंदोलन का जन्म हुआ।

३. स्त्री-विमर्श का पश्चिम-पक्ष

नारी विमर्श की अवधारणा को समग्र रूप से समझने के लिए इससे संबंधित पश्चिम की विचारधाराओं और उसके इतिहास को भी समझना बहुत ही जरूरी है। हमारे देश की स्त्री की तरह पाश्चात्य स्त्री भी स्वतंत्रता और समानता के अधिकारों से वंचित रही थी तथा पुरुषों के अधीन रहने को मजबूर थी। उन संपन्न देशों में भी उसकी स्थिति दोयम दर्जे के नागरिक के रूप में ही थी। पश्चिम की सामाजिक

व्यवस्था में स्त्री को केवल विवाह एवं संतान उत्पत्ति का अधिकार था। वह भी दासी थी। आज की स्त्री की तरह वह सार्वजनिक कार्यों में भाग नहीं ले सकती थी और न ही उसे मतदान देने का कोई अधिकार प्राप्त था। किन्तु फ्रांस की राज्यक्रांति और इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति ने स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन किया था। मार्ग्रेट वेस्टन ने इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति का चित्रण इन शब्दों में किया है- "पश्चिमी देशों में नारी को घर से बाहर लाने में औद्योगिक क्रांति का बहुत बड़ा हाथ है। स्त्रियों को कारखानों और मिलों में काम करना पड़ा। बाद में उनका वहां शोषण किया जाने लगा। काम की स्थितियां ओर खराब होने लगी तो उन्होंने इस के विरुद्ध में आवाज उठानी शुरू की। कठोर परिश्रम के बावजूद उन्हें कम आमदनी पर काम करना पड़ता था। स्त्रियों की हैसियत पुरुष से कम होती थी।"[15] इससे स्पष्ट होता है कि पितृसत्तात्मक समाज में पूंजीपति स्त्रियों का शोषण कर रहे थे।

स्त्री शोषण के विरुद्ध उठी इन क्रांतिओ से प्रेरित होकर अन्य देशों में लोकतांत्रिक प्रणाली का विकास धीरे-धीरे होने लगा था। प्रतिनिधित्व एवं मताधिकार की मांग को भी बल मिला फ्रांस की राज्यक्रांति की वास्तविकता के बारे में राजकिशोर लिखते हैं-"फ्रांस की राज्यक्रांति के जनक रूसो ने स्वतंत्रता समानता और बंधुत्व का जो नारा दिया, वह वस्तुतः पुरुष समाज के लिए ही था, नवयुग के उस महास्वप्न में स्त्रियां कहीं नहीं थी।"[16] इस तरह से इंग्लैंड और फ्रांस की क्रांतियों से स्त्रियों को अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ने की प्रेरणा प्राप्त हुई।

स्त्री चिंतन को अभिव्यक्त करने वाला पश्चिम के प्रथम ग्रंथ का गौरव 1792 ई. में मेरी वाल्स्टन द्वारा लिखी गई पुस्तक 'इंडिकेशन ऑफ़ द राइट ऑफ विमेन'को प्राप्त है जिसमें स्त्री अधिकारों के लिए सब से पहले आवाज उठाई गई थी। 'इंडिकेशन ऑफ़ द राइट ऑफ विमेन' में लिंगभेद को भूलकर स्त्रियों में मानवोचित गुणों को विकसित करने का आहवान किया गया था क्योंकि अब तक स्त्री वर्ग को शारीरिक रूप से कमजोर कह कर खारिज कर दिया गया था, जो वास्तविक

रूप में उसके नैसर्गिक गुण हैं। उसे भोग की वस्तु समझा गया न कि एक मनुष्य। इसी कारण उसे शिक्षा से वंचित रखा गया था जबकि क्षमता उसके पास भी थी। वाल्स्टन के बाद 1844 में फ्रांस देश की 'फ्लोरा ट्रीरटन' ने स्त्रियों की मांगे प्रस्तुत करने के लिए एक महिला संगठन की स्थापना की परंतु यह योजना असफल रही थी।

१९वीं सदी की शुरुआत में, शिक्षा, राजनीति और कानून आदि विविध क्षेत्रों में महिलाओं के समान अधिकारों को लेकर आंदोलन शुरू हो गया था। जिसने धीरे-धीरे जन अभियान का रूप धारण किया था। अमेरिका के नारी आंदोलन में एक सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में काम करने वाली एलिजाबेथ केडी स्टेटन ने प्रसिद्ध 'सेनेका काल कन्वेंशन ऑफ 1848' लिखा जिसमें महिलाओं के लिए मतदान का अधिकार, संपत्ति का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, रोजगार का अधिकार तथा राजनीति और गिरिजाघरों में सार्वजनिक भागीदारी के अधिकार की मांगे उठाई गई। महिलाओं की गुलामी के पीछे मुख्य रूप से धर्म की भूमिका को स्वीकारते हुए स्टेटन ने कहां कि "सभी प्रकार के संगठित धर्म महिलाओं के शत्रु रहे हैं। हिंदु विधवाओं को चिता पर चला देते हैं, तुर्क उन्हें हरम में रखते हैं, अमेरिकी एक मां को बच्चा पैदा करते समय सिर्फ इसलिए क्लोरोफॉर्म देने से इंकार कर देते हैं, क्योंकि उसने ईव का मौलिक पाप किया था जिसके लिए उसे सजा मिलनी ही चाहिए।"[17]

स्त्री मुक्ति के लिए किए जाने वाले प्रयासों में प्रसिद्ध स्त्री चिंतक जॉन स्टूअर्ट मिल का विशेष योगदान रहा है। इन्होंने अपनी पुस्तक 'द सब्जेक्शन ऑफ द विमेन' के माध्यम से स्त्री मुक्ति तथा उसके मताधिकार के लिए आवाज उठाई। महिला के मताधिकार पर बोलते हुए उन्होंने 'हाउस ऑफ कॉमन्स' में कहां- 'स्त्री और पुरुष के बीच सामाजिक बंधनों का संचालन वाले नियम जो एक सेक्स श्रेष्ठ और दूसरे को उसके अधीन बताते हैं, अपने आप में गलत है। इन्हें पूर्ण समानता के नियम के द्वारा बदल दिया जाना चाहिए ताकि न तो किसी एक पक्ष में

अधिक शक्ति रहें और ना ही किसी एक की अधीनता' यद्यपि स्टूअर्ट मिल के इस समानता के नियम के इस विचार को खारिज करने के लिए पितृसत्तात्मक समाज उस समय उठ खड़ा हुआ था। जबरदस्त विरोध प्रदर्शन हुआ था। परन्तु शुरुआत तो हो चुकी थी। परिणाम स्वरूप पहले सन 1869 में इंग्लैंड में महिलाओं को नगर पालिका चुनाव में मत देने का अधिकार मिला फिर सन 1928 में विधानसभा और संसद के चुनाव में भी मत देने का अधिकार मिला।

अमेरिका जैसे देश में कपड़ों के कारखानों में कार्य का समय 16 घंटे निर्धारित था। 8 मार्च अट्ठारह सौ सत्तावन को स्त्रियों ने न्यूयॉर्क की सड़कों पर वेतन वृद्धि और कार्य के घंटे घटाकर 10 करने की मांग को लेकर असफल प्रदर्शन किया था। यह घटना अपना एक ऐतिहासिक महत्व रखती है जिसे आशा रानी वोहरा ने इस रूप में व्यक्त किया है- 'विश्व में महिलाओं का यह प्रथम प्रदर्शन था, जिसे उस समय के ट्रेड यूनियनों ने पसंद नहीं किया था। किसी प्रकार के समर्थन के अभाव में यह आंदोलन पुलिस द्वारा दबा दिया गया था। पर महिला मुक्ति के इतिहास में यह एक अमिट लकीर छोड़ गया था। इस प्रथम संगठित प्रदर्शन को ही महिला आंदोलन की प्रेरणा मानते हुए, 8 मार्च सदा के लिए 'अंतर्राष्ट्रीय महिला संघर्ष दिवस' के रूप में मनाया जाने लगा था। अंतर्राष्ट्रीय महिला संघर्ष दिवस का ही परिणाम है कि आज इस दिन को 'महिला दिवस' के रूप में मनाते हुए महिला सशक्तिकरण के स्वर बुलंद करने की घोषणाए होती है। नारी चेतना की जागृति सतत बनाए रखने के प्रयास होते हैं और अधिकारों के लिए लड़ाईयां लड़ी जाती है।

अमेरिका देश से प्रभावित होकर इंग्लैंड में भी स्त्री जागृति का स्वर औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप उद्भूत हुआ था। सन 1838 में मताधिकार आंदोलन के नेताओं ने मताधिकार प्रस्ताव रखा। सन 1869 में टैक्स भरने वाली स्त्रियों को नगर पालिका में मतदान का अधिकार मिला था। मतदान हेतु ही सन 1897 में 'नेशनल यूनियन ऑफ सफरेज' सोसाइटी की स्थापना की गई थी। पार्लियामेंट में

कई बार आवेदन पत्र दिए गए और जुलूस निकाले गए थे। परिणाम स्वरूप १९वीं सदी के अंत में इंग्लैंड में स्त्रियों को मत देने का अधिकार प्राप्त हुआ । प्रथम विश्वयुद्ध में स्त्रियों की भागीदारी और सेवाओं को देखते हुए सन 1918 ई. में कुछ शर्तो सहित और अनेक संघर्षों के बाद सन 1928 ई. में मतदान करने का पूर्ण अधिकार इंग्लैंड की स्त्रियों को प्राप्त हुआ।

नारी मुक्ति आंदोलन के क्षेत्र में फ्रांस अग्रिम रहा है परन्तु वहां भी स्त्रियों की स्थिति विशेष संतोषजनक न थी। वहां भी मताधिकार के लिए स्त्रियों को संघर्ष करना पड़ा। प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखिका सिमोन द बोउआर अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द सेकेंड सेक्स' (The Second Sex-1949) अनुवाद स्त्री उपेक्षिता-१९५३ के माध्यम से पश्चिमी समाज में नारी की स्थिति का सही विश्लेषण करती है सिमोन लिखती है- 'सन 1879 ई. में समाजवादी कांग्रेस ने घोषणा की थी कि स्त्री और पुरुष दोनों समान है फिर भी नारी मुक्ति का आह्वान एक फिजूल मसला बनकर रह गया क्योंकि यहां सवाल तो श्रमिक संघर्ष और सर्वहारा की मुक्ति का था। इसके विपरीत बुर्जुआ स्त्री या सामाजिक संस्था के चौखट में स्थित होकर भी नए अधिकारों की मांग कर रही थी। दरअसल वे क्रांतिकारी नहीं थी। उनका दृष्टिकोण सुधारवादी था। उदारवादी पुरुष यह चाह रहे थे कि स्त्री अपनी गरिमा ना खोए। घर स्त्री का मंदिर है। यदि वह राजनीति में भाग लेती है, वोट का अधिकार मांगती है तो वह अपना लालित्य खो देगी।' इससे स्पष्ट होता है कि फ्रांस जैसे देशों में भी स्त्री को अधिकार वंचित रहने और घर की शोभा कारक वस्तु के रूप में समझा जाता था। 'सिमोन द बोउआर' का मानना था कि "स्त्री पैदा नहीं होती बना दी जाती है।"[18] वह स्त्री के समस्याओं के समाधान भी सुझाती है। उनका मानना था कि स्त्री का शरीर ही उनकी गुलामी का मुख्य कारण है और अपनी नियति को पलटना खुद स्त्री के हाथ में है। अपनी शारीरिक सीमाओं से ऊपर उठकर ही औरत एक पूर्ण मनुष्य बन सकती है। इन तथ्यों के माध्यम से उन्होंने आधुनिक नारीवादी विचारधारा की नींव रखी थी।

‘सिमोन द बोउआर’ ने नारी मुक्ति के लिए किसी प्रकार के आंदोलन की कल्पना नहीं की थी। 1968 में जब फ्रांस में नारी आंदोलन चल रहा था, सिमोन भी उसी में शामिल हो गई थी। इसके अतिरिक्त गर्भपात को कानूनी स्वीकृति दिलाने के लिए अभियान का उन्होंने सफल नेतृत्व किया था तथा अलग से महिला संगठन बनाने की बात भी कही थी। The second sex पुस्तक के पक्ष और विपक्ष में आज तक अनेक विचार आए लेकिन आज भी यह पुस्तक आधुनिक नारीवाद के लिए दिशा-निर्देश का कार्य करती है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात जब समाज में नारी जीवन और समस्याओं को लेकर अनेक प्रश्न उठ खड़े हुए थे तो उनके समाधान प्रस्तुत करने में इस पुस्तक में उल्लेखनीय और महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का कार्य किया था।

सन 1963 में बेटी फ्रीडन की महत्वपूर्ण The Faminine Mystigue प्रकाशित हुई थीं। इसमें उन्होंने दूसरे विश्व युद्ध के बाद अमेरिकी समाज में महिलाओं में व्याप्त असंतोष तथा बेचैनी से समाज को परिचित कराते हुए अपनी चिंता को व्यक्त किया था । फ्रीडेन का मानना था कि नारी जीवन का उद्देश्य मात्र अपने नारी जीवन की आकांक्षाओं और इच्छाओं को पूरा करना नहीं परंतु अपनी मानवीय अस्मिता को भी स्थापित करना है। उपभोक्ता सामग्रियों का ढेर भी नारी जीवन में व्याप्त अंदरूनी खोखलेपन को भर नहीं सकता। फ्रीडेन ने जिन प्रश्नों को तत्कालीन समाज के समक्ष रखा था। वे सभी प्रश्न आज के उभरते उपभोक्तावादी समाज पर भी समान रूप से लागू होते हैं। सिमोन द बोउआर के समान ही फ्रीडेन ने भी नारियों के समकक्ष घर की चार दीवारों से बाहर समाज में उनकी स्वतंत्रता और अस्मिता की अपार संभावनाओं पर प्रकाश डालने का महत्वपूर्ण कार्य किया था। सिमोन द बोउआर की पुस्तक आठवें दशक में भी यह अपने उन्मुक्त एवं नवीन विचारों के द्वारा चौका देने वाली पुस्तक थी, वही ‘फेमिनिन मिस्टिक’ ने समाज में पहले से व्याप्त विचारों को आकार प्रदान करने का कार्य किया था। 1966 ई. में फ्रीडेन ने नेशनल ऑर्गेनाइजेशन ऑफ वूमेन (Now) की स्थापना

की और उसकी संस्थापक अध्यक्ष भी निर्वाचित हुई। यह संगठन आज दुनिया का सबसे बड़ा नारीवादी संगठन माना जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पश्चिम की स्त्रियां जो आज स्वतंत्र जीवन जी रही है, इसके लिए उन्हें एक समय अनेक प्रकार के संघर्ष करने पड़े थे। उन्होंने अपनी स्थिति सुधारने हेतु अनेक आंदोलन चलाए थे। मताधिकार प्राप्त करने की सफलता के बाद धीरे-धीरे अन्य अधिकार भी सुलभ होते गए और स्त्रियां राजनीति के क्षेत्र में भी बेखोफ उतरी थी। इस संदर्भ में सिमोन द बोउआर के विचार है- 'अंत में 'संयुक्त राष्ट्र संघ' ने 1945 तक आते-आते दुनिया की सारी स्त्रियों तथा पुरुषों के लिए समान अधिकार का ऐलान किया था। अधिकतर देशों में स्त्रियों को मताधिकार देखकर राजनीतिक जीवन में उनको प्रवेश अधिकार दिया।' इस तरह से अपने अधिकारों के प्रति जन सामान्य में चेतना प्रसार कराने के लिए ऐसी अनेक स्त्रियां आगे आयी। जिन्होंने साहित्य के माध्यम से कई आंदोलन को गति प्रदान की और अंत: स्त्रियों के लिए गरिमा युक्त परिस्थितियों उपस्थित कर सकें।

४. हिंदी साहित्य लेखन में स्त्री-विमर्श की दशा एवं दिशा

नवजागरण के फल स्वरुप सती प्रथा, बाल विवाह पर रोक लगी। जब भारतेंदु ने पहली बार "बालबोधिनी" नामक स्त्री पत्रिका निकाली तो उनका विरोध किया गया था। द्विवेदी युग में उपेक्षित स्त्री पात्रों के प्रति अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त जैसे विद्वान कवियों का ध्यान गया। तब उन्होंने पूरी संवेदना तथा सहानुभूति के साथ उनकी महानता का चित्रण अपनी रचनाओं में किया। छायावादीयुग के कवियों में से जयशंकर प्रसाद जी ने स्त्री को 'श्रद्धा', निराला ने 'ज्योतिर्मय', पंतजी ने 'देवी', 'मां', 'सहचारी' इत्यादि कहकर सम्मानित किया। प्रयोगवादियों ने स्त्री को 'कलगी बाजरे की' और 'हरि बिछी हुई घास' आदि नए प्रतिक-उपमान दिए।

स्त्री विमर्श परंपरा और प्रासंगिकता के लिए ज्ञान चेतना और अधिकार के साथ ही साथ सम्मान के लिए निरंतर संघर्षरत स्त्री जीवन को नई दिशा के लिए स्त्री विमर्श से बेहतर कुछ हो सकता है ? स्त्रियों के लेखन में 'स्व' अस्तित्व पर सर्वाधिक जोर है। सिमोन द बोवआर का भी मानना है कि "ज्यों-ज्यों नारियां अपने 'स्व' अस्तित्व पर जोर देगी। उनसे संबंधित काल्पनिक और अवास्तविक कथाएं लुप्त होती जाएगी, फिलहाल नारी का काल्पनिक रूप ही हर मानव के हृदय में है।"[19]

आधुनिककाल की 'मीरा' कहीं जाने वाली महादेवी वर्मा को जेवरों की चाहत ना होकर 'स्व' की भूख अधिक थी। 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरों ना कोई।' 'स्व' यह है। उसे आंगन नहीं वह (स्व) चाहिए जो उसे मिलना चाहिए। मीराबाई स्त्री विमर्श परंपरा एवं प्रासंगिकता की बड़ी पैरोकार हुई थी, सिमोन तो बाद में आई। महादेवी वर्मा की 'मैं नीर भरी दुख की बदली' बरसकर अपना होना जरूरी जता गई है। वे अपनी समस्त स्त्री जाति का दुख महसूस करती है। स्त्री विमर्श में स्त्रियां पुरुष विरोधी नहीं है। स्त्रियां मुक्ति चाहती है पुरुष की पशुता से।

हिंदी साहित्य के सभी रूपों जैसे की नाटक, कविता, कहानी, निबंध, उपन्यास, एकांकी, यात्रावृतांत और संस्मरण में महिलाओं की सामाजिक, राजनीतिक, पारिवारिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और परंपरागत स्थितियों का वर्णन बखूबी देखने को मिलता है। कोई भी समय और साहित्य ऐसा नहीं जिसमें स्त्री की उपस्थिति न हो। यहां तक की रामायण और महाभारत जैसे ग्रंथों में भी बिना स्त्री के जैसे किसी घटना की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। जब समस्त संसार का निर्माण ही स्त्री-पुरुष दोनों के योग से होता है तो एक को छोड़कर दूसरे की कल्पना करना भी निरर्थक ही होगा।

आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक स्त्री की स्थिति के विषय में सभी पुरुष एवं स्त्री लेखक-लेखिकाओं ने अपने-अपने तरीके से उसे देखने, समझने और

प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। आदिकाल में स्त्रियों को केवल सौंदर्य और भोग की दृष्टि से देखा जाता था। उस समय चाहे नगर हो या गांव स्त्रियों में शिक्षा की बहुत कमी रही थी। राजागण दूसरे की कन्या या पत्नी की सुंदरता सुनकर या देखकर उसे पाने के लिए उससे प्रस्ताव रखता था कि या तो इसे स्वेच्छा से हमें दे दो या युद्ध करो। मध्ययुग में अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक परिवर्तन हुए। इस समय लोगों का जीवन स्तर इतना उत्तम नहीं था जितना होना चाहिए। इसका सीधा कारण यह था कि यह काल सांस्कृतिक और सामाजिक रूप से बहुत उथल-पुथल का काल रहा। मध्यकाल में जब पुरुष की दशा तथा दिशा संतोषजनक नहीं थी तो नारी तो बहुत दूर की बात है। क्योंकि भारतीय समाज पुरुष प्रधान समाज रहा है। मध्यकालीन समय में नारी के विषय में संतों की अपनी-अपनी धारणा रही थी। किसी ने स्त्री को पुरुष के विकास मार्ग का अवरोधक माना तो किसी ने स्त्री को संसार का निर्माण करने वाली देवी के रूप में। स्त्री का देवी रूप तो भारतीय समाज में बहुत पुराना है। इसके विषय में कहा गया है कि 'जहां नारी की पूजा होती है वहां देवता निवास करते है'। संत कवियों की दृष्टि नारी के प्रति बहुत स्पष्ट एवं पारदर्शी रही थी। संत कवियों ने नारी को समाज का अनिवार्य अंग माना है। संत कवि नारी के गुण और दोष दोनों को बहुत सहज ढंग से व्यक्त करते हैं। इन्होंने ना तो आंख बंद करके नारी की प्रशंसा की है और ना ही आंख खोलकर उसकी निंदा। संतो ने ऐसी नारी को समाज के लिए कोंढ के रूप में माना है जो पुरुष को पतन के मार्ग पर ले जाती है।

कृष्ण भक्त संतो में मीरा का स्थान वास्तव में सर्वोपरि है। क्योंकि मीरा ने कृष्ण भक्ति के माध्यम से उस समय के समाज की रूढ़ियों, परंपराओं और मिथ्याडम्बरो का तीव्र विरोध किया था। साथ ही समाज में एक संदेश भी छोड़ा है कि नारी आत्माविश्वास और कर्म के सहारे कुछ भी करने में समर्थ है। मीरा ने काशी के संत रविदास को गुरु के रूप में स्वीकार कर भेदभाव और जाति-पाती को चुनौती दी थी। वहीं दूसरी ओर 'मेरो तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई। जाके सिर मोर

मुकुट मेरो पति सोई।' कह कर अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता को सार्थक अभिव्यक्ति दी थी । स्पष्ट है कि स्त्री भी पुरुष की तरह समाज को बदलने और आगे बढ़ाने में समर्थ है। जिस स्त्री विमर्श की बात आज चारों ओर साहित्य में हो रही है। निश्चित रूप से उसकी शुरुआत तो मध्यकाल में मीरा ने कर दी थी। भक्तिकाल तक आते-आते स्त्रियों को समाज में आदर और सम्मान तो मिला। लेकिन धार्मिक एवं रूढ़ियों की बेड़ियों ने उनको वहां भी जकड़े रखा था।

तुलसीदास ने सीता के रूप में एक आदर्श स्त्री को प्रस्तुत कर समाज के समक्ष एक सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया है। जिसे लोग आज भी पसंद करते हैं। सूरदास ने काव्य में राधा और कृष्ण का प्रेम आज भी लोगों के बीच प्रसिद्ध है। यहां भी हम देखे तो गोपिया और राधा कृष्णा की इतनी दीवानी है कि वह सभी के सामने अपने प्रेम का इजहार करने से नहीं चूकती है। इतना सब होने के बाद भी उस समय समाज में स्त्री शिक्षा की न्यूनता, बाल विवाह, अनमेल विवाह और विधवा विवाह का विरोध आदि कुप्रथाओं से नारी जीवन को नर्क बना दिया था। रीतिकाल तक आते-आते स्त्री फिर भोग की वस्तु बनी थी। इस समय के अधिकांश कविओ ने स्त्री के केवल रूप सौंदर्य का ही चित्रण किया था। इन की दृष्टि में नारी केवल प्रेम सौंदर्य और भोग की वस्तु है। रीतिकाल में वृन्द और रहीम आदि ने अवश्य स्त्री-पुरुष को समान दृष्टि से देखा। इन्होंने बुरे की सदैव निंदा और अच्छे की सदैव प्रशंसा की है चाहे पुरुष हो या फिर स्त्री।

आधुनिकयुग में आकर धीरे-धीरे स्त्रियों के प्रति कवियों की दृष्टि में हर प्रकार से परिवर्तन दिखाई देता है। इस समय की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और राष्ट्रीय भावना ने स्त्री को सम्मान के शिखर पर आगे बढ़ने के लिए मार्ग प्रशस्त किया। भारतेंदु युग का समय गुलामी का समय रहा था। इस समय समाज का प्रत्येक व्यक्ति चाहे स्त्री हो या फिर पुरुष आजादी की जंग में शामिल हो रहा था। इतना ही नहीं सभी बिना किसी भेदभाव के कंधे से कंधा मिलाकर संघर्षरत थे। भारतेंदु युग के कवियों में प्रताप नारायण मिश्र और भारतेंदु आदि ने समाज

में फैली कुरीतियों एवं रूढ़ियों जैसे बाल विवाह और स्त्री-शिक्षा की कमी आदि का जमकर विरोध किया। द्विवेदी युग के प्रमुख कवियों मैथिलीशरण गुप्त और अयोध्या सिंह उपाध्याय आदि कवियों ने अपने काव्य में स्त्रियों को वह स्थान दिलाया है जो उसे समाज के सर्वोच्च पद पर आसीन करता है। मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' में उर्मिला और सीता को समाज सेविका के रूप में प्रस्तुत करके महान संदेश दिया है। उर्मिला जहां त्याग, करुणा, दया और आत्मसंयम की साक्षात देवी है वही दुसरी ओर सीता दया, प्रेम, करुणा और लोक सेविका का जीवित प्रतिबिंब है। 'साकेत' में जब उर्मिला अपने आप को समझाते हुए कहती है कि–'हे मन! तू प्रिय पथ का विघ्न न बन।' तो इससे उत्तम आत्मसंयम का उदाहरण और क्या हो सकता है ? क्या यह आत्मसंयम किसी भी बात में पुरुष से कम है क्या? ठीक उसी प्रकार अयोध्या सिंह की कविता 'पवन दूतिका' में राधा वायु को अपना दूत बनाकर जब कृष्ण के पास भेजती है तो उसे समझाती है कि रास्ते में थके श्रमिक, किसान और पशु-पक्षी मिले तो उनके पास धीरे-धीरे से बहना एवं उन्हें शीतलता प्रदान करना उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न पहुंचे। इससे अधिक करुणा, संवेदना एवं दया और कहां देखने को मिलेगी।

हिंदी साहित्य के छायावादीकाल के विषय में विद्वानों का मानना था कि छायावादियों के लिए स्त्री केवल सौंदर्य, प्रेम और कल्पना का साधन है। यह निराधार है। इस समय ऐसे अनेक कवि और लेखक हुए। जिन्होंने स्त्री को समाज में बहुत ही सम्मान की दृष्टि से देखा है। इसका अर्थ है कि छायावाद के समय स्त्री को बहुत उदातरूप में स्थापित किया गया। सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की सरोज स्मृति, महादेवी वर्मा का समस्त रचना उन्हें वर्तमान समय में आधुनिक मीरा की संज्ञा से सुशोभित करता है। पंत एवं प्रसाद ने भी नारी को अपनी बुद्धि और विवेक के अनुसार महिमा मंडित करके समाज पर उपकार ही किया है। प्रसाद की 'कामायनी' महाकाव्य में जब मनु जीवन से निराश और हताश होता है तब श्रद्धा ही उसकी सहचारी बनकर उसे निराशा से बाहर निकालने का कार्य करती

है। वह समझाती आती है कि 'सुख-दुख, हानि-लाभ, जीवन-मरण, आदि-अंत, यश-अपयश, जय-पराजय यह तो प्रकृति का शाश्वत नियम है। इसे त्याग कर मेरी दया, ममता और सानिध्य को ग्रहण कर संसार का पूर्ण निर्माण करो।'

दूसरी ओर प्रेमचंद तथा उनके समकालीन लेखकों ने अपने-अपने उपन्यासों और नाटकों के माध्यम से दहेज प्रथा, बालविवाह, अनमेल-विवाह, वेश्यावृत्ति का विरोध कर और राजनीतिक एवं सामाजिक रूप से नारी शोषण को यथार्थ रूप से प्रस्तुत किया है। प्रेमचंद के गोदान, निर्मला, गबन और कर्मभूमि आदि इसका जीता जागता उदाहरण है। जिसमें स्त्री के प्रति होने वाले उपरोक्त अत्याचारों का खुलकर विरोध किया गया है।

प्रगतिवादी युग में नागार्जुन, रामेश्वर शुक्ल अंचल और शिवमंगल सिंह सुमन आदि कवियों ने अपने लेखनी एवं कुशाग्र बुद्धि के द्वारा अपने उपन्यासों एवं कविताओं में नारी के शोषण के खिलाफ केवल आवाज ही नहीं उठाई परन्तु इसके खिलाफ आंदोलन छेड़ने की वकालत भी की है। इसका मतलब है कि प्रगतिवादी कवि समस्याओं को उठाकर ही नहीं छोड़ते परन्तु उनका समाधान भी बताते हैं। 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में चाची अपनी व्यक्तिगत समस्याओं को सहते हुए हरेक दुख और मुसीबत में गांव वालों की सेवा निस्वार्थ भाव से करती है। चाहे कोई उसका शत्रु हो या फिर मित्र। वह किसी में भेद नहीं करती। इसके साथ ही 'नई पौध' उपन्यास में अनमेल विवाह की समस्याओं को उठाते हैं। उसका समाधान युवा वर्ग के माध्यम से करने का प्रयास करते हैं। पंत ने 'युगवाणी' संग्रह की कविता 'स्वतंत्रता की पुकार' के द्वारा नारी स्वतंत्रता की आवाज बुलंद की है।

नई कविता एवं समकालीन कविता तक आते-आते स्त्री-विमर्श की अपनी एक अलग पहचान बन गई है। आज के साहित्यकार अपनी लेखनी द्वारा अपने जीवन में घटित यथार्थ को बड़ी ही सहजरूप से अभिव्यक्त कर रहे है। प्रभा खेतान, चित्रा मुद्गल, मन्नू भंडारी, मृदुला गर्ग, मैत्रेयी पुष्पा, नासिरा शर्मा, मेहरून्निसा

परवेज, जितेन्द्र श्रीवास्तव, अनामिका, अनुराधा सिंह आदि। सभी ने अपने जीवन एवं समाज के संबंधों पर विस्तार से प्रकाश डाला है। परन्तु सत्य तो यह है कि यदि स्त्री का दर्द अनुभव करना है या फिर जानना है तो आपको उस जिंदगी को स्वयं जीना पड़ेगा। यदि ऐसा नहीं करते तो वे हकीकत न होकर केवल लोगों के मनोरंजन का साधन बनकर रह जाएगा।

संदर्भ

1. नगेंद्रनाथ वसु, हिंदी विश्वकोश भाग-2,पृ.478
2. रामचंद्र वर्मा, हिंदी शब्द सागर,पृ.911
3. आचार्य रामचंद्र वर्मा, लोकभारती प्रामाणिक हिंदी कोश, पृ.764
4. Oxford dictionary and thesaurus, New Delhi, Oxford University press edition- 2001page number-211.
5. डॉ नगेंद्र, मानवी की पारिभाषिक कोश,पृ.89
6. हिंदी साहित्य: वैचारिक पृष्ठभूमि डॉ. लालचंद गुप्त 'मंगल' लेख: प्रोफेसर रोहिणी अग्रवाल-स्त्री विमर्श और हिंदी साहित्य पृ.229
7. डॉ. अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली,पृ.545-546
8. वही, पृ.549
9. डॉ. सुमन राजे, हिंदी साहित्य का आधा इतिहास,पृ.302
10. प्रभा खेतान, अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य,पृ.36
11. तस्लीमा नसरीन, औरत का कोई देश नहीं,पृ-94
12. सीमोन द बोउवार, दि सेकंड सेक्स, प्रस्तुत डॉ. प्रभा खेतान,पृ.62
13. आशा रानी व्होरा, औरत कल, आज और कल,पृ.15
14. ईश्वर चंद्र विद्‍यासागर, हिरण्यमय बेनर्जी,पृ.32
15. मार्गरेट वेस्टन: विशेषांक 'बसुधा',संपादक-अरविन्द जैन तथा लीलाधर मंडलोई,पृ.175-176
16. राजकिशोर- क्या यह नारीवाद के अवसान का समय है,पृ.8
17. सरला माहेश्वरी, नारी प्रश्न,पृ.18
18. प्रस्तुत-प्रभा खेतान, स्त्री उपेक्षिता, (सिमोन द बाउआर कृत- दि सेकंड सेक्स-सीमोन द बोउआर),पृ.62
19. वही, पृ.89